द्वादशम्-पुष्प

ज्ञान-ज्योतिः

'दिगम्बर जैन" वर्ष ४२ अंक २ के ग्राहकों



ब्रह्मचारी नन्दलाल

प्रकाशक—

ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रन्थ-माला

भिण्ड-ग्वालियर।

।

)

...नियम आप ।
...ति प्रताप ॥
... निहारा ।
...गा मारा ॥
... दूजा नाहीं ।
...त सदा ही ॥
... पुण्य जीव ।
...न्यातीत ॥

पाप... पुण्यातीत... सुहाना ।
अक्षय-सुख का थान, सिद्ध-सम अतुल खजाना ॥
आवा गमन न क्लेश, करो स्वातम-पद वासा ।
रचा कर्म-कृत जाल, विविध सब देख तमासा ॥
ध्यावे निशि दिन आपका, योग त्याग योगीश ।
ज्ञान-ज्योति प्रताप ही, सहज होय जगदीश ॥
सहज होय जगदीश, जगत से सहज निराला ।
जनम-मरण भ्रम-नाश, सिद्ध-सम ध्याने वाला ॥
क्यों आवे ! जगमांय, जन्म का कारण नाशा ।
युक्तयायुक्त विचार, 'नन्द' के हृदय प्रकाशा ॥

—ब्र० नन्दलाल ।

नोट :—नम्बर ११ समयसार-नाटक प्रेस में छप रहा है ।

द्वादशम-पुष्प

ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रन्थ-माला

ज्ञान-ज्योतिः



रचयिता—

विद्वत् रत्न अध्यात्म-रहस्य के मर्मज्ञ श्री १०८ स्वर्गीय

भट्टारक वीरसेन स्वामी, सिंहासन कारंजा के

पट्टशिष्य—

ब्रह्मचारी नन्दलाल महाराज

प्रकाशक—

ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रन्थ-माला,

भिण्ड—ग्वालियर।

प्रथमावृत्ति ४००० | वी० सं० २४७५ ई० सन् १९४९ | मूल्य सदुपयोग



१५०) लाला मुन्शीलालजी जैन,
सभापति दि० जैन पंचायत एटा,



१५१) लाला कुञ्जीलालजी जैन,
(पंसारी)

आभार-प्रदर्शन

ब्रह्मचारी नन्दलाल दिगम्बर जैन ग्रन्थ-माला के इस **द्वादशम-पुष्प** के प्रकाशनार्थ चित्राङ्कित, एटा (यू० पी०) के सज्जनोंने जो आर्थिक सहायता पहुंचाई है, इसके लिये हम ऊनके आभारी हैं। —प्रकाशक।



१५०) लाला किशोरीलालजी जैन,
(सर्राफ)



१५१) लाला राजकुमारजी जैन,
(नम्बरदार)

प्रस्तावना

ज्ञानज्योतिः प्रहत दुरितः ध्वान्तसंसारकात्मा
नित्यानन्दाद्यतुलमहिमा सर्वदा मूर्तिमुक्तः ।
स्वस्मिन्नुच्चैरविचलतया ज्ञानशीलस्य मूलम्
यस्ते वन्दे भवभयहरं मोक्षलक्ष्मी शमीशम् ॥

—पद्मप्रभमलधारदेव

आज आपके समक्ष इस ग्रन्थ-मालाका एकादश-पुष्प **ज्ञानज्योतिः** नामकी पुस्तक उपस्थित कर रहा हूं। इस पुस्तकमें **ज्ञानकी शुद्धानुभुतिका** अचिन्त्य सामर्थ्य १९ पदों द्वारा कहा गया है, जिसे महानुभाव पाठक स्वयं अनुभव कर सकेंगे, ऐसा विश्वास रखता हूं।

इस अनंत संसारमें चतुर्गति-रूप परिभ्रमणका अंत न होनेके कारण एक मिथ्या-भाव ही प्राणीमात्रके साथ अविछिन्न रूपसे (सतत) चला आता है। यह मिथ्यात्व जीवात्माका निज स्वसत्तात्मक भाव हो रहा है, इसी निज स्वसत्तात्मक मिथ्या-भावके सद्भावसे रागादिक भावोंके उदय-कालमें जीवात्माकी एकत्व रूप परिणति (अनुभूति) होती है, यह मिथ्या-परिणति अनादि और बंध रूप है। अर्थात् इस मिथ्या-परिणतिके सद्भावमें जीवके नानारूप जो औदायिक-भाव, उन अखिल भावोंके करता तथा भोगता स्वयं होते हैं, उक्त एकत्व

(मिथ्या) भावके परिहारार्थ एक मात्र उपाय स्वयं पर परिणतिका (भेदविज्ञान) होना ही कहा है :—

भेद विज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन ।
अस्येवा भावतो वद्धा वद्धा ये किल केचन ॥

—अमृतचन्द्राचार्य

अर्थ—जो कोई सिद्ध (मुक्त) हुआ है वह इस **भेदविज्ञानसे** ही हुआ है, और जो बधे (अमुक्त) हैं वो भी इस **भेदविज्ञानके** अभावसे ही बंधे हैं ।

कर्मत्रय—(१) द्रव्यकर्म-ज्ञानावर्णादिक, (२) नौकर्म-शरीरादिक, (३) भाव-कर्म,—रागादिक, इन तीनों कर्मोंकी सत्ता पौद्गलिक है। अतः जीव और पुद्गलका भिन्न-भिन्न प्रदेश स्वयं सिद्ध है । इसी कारण संबंध कहा है । किन्तु जीवमें मिथ्यात्व (एकत्व) भावके सबंधसे जीवकी मिथ्या-परिणति अनादि उपादान (आप) रूप है, इसी कारण जीवको ही मिथ्यात्वी कहा है, न कि रागादिकोंके उदयापेक्षासे ! अस्तु, रागादिक भावोंके साथ एकक्षेत्रानुभूति-स्वरूप परिणमन जीवात्माका अनादि संतान-रूप चला आने से जीवात्माको ही मिथ्यादृष्टि कहा गया है । जैसे जलका उष्ण-रूप होना ! किन्तु जीवात्मा अपने अपराध (अज्ञान) से उन रागादिक-अज्ञान भावोंमें एकत्व-रूप परिणति (ज्ञान श्रद्धान) करता आता है । अतः उसी ज्ञान श्रद्धान के नाम ही मिथ्याज्ञान मिथ्या दर्शन हैं और शुद्धानुभूतिकी विपरीत परिणति होना मिथ्या चारित्र कहा है, जो कि अनादि है ।

श्रीमदाचार्य श्री **कुन्द-कुन्द स्वामीने** अपने समयसारजीमें

रागादिक भावोंको अज्ञान भाव कहा है और उन रागादिक भावोंके स्वामीको अज्ञानी कहा गया है, यदि रागादिक जीवात्माका स्वकीय (नीजी) स्वभाव होता तो जीवात्माको अज्ञानी क्यों कहा ? जीव तो अनादि ज्ञान स्वरूप स्वयं सिद्ध है। किन्तु ज्ञान स्वरूपको ज्ञान श्रद्धान न होने के कारण रागादिकों में एकत्वानुभूतिके सद्भावसे अज्ञानी कहा है। अतः ज्ञान सदाकाल (त्रिकाल) ज्ञान ही है, अज्ञान कहां ! नहीं है। रागादिक भाव उदयागत होनेसे अध्रुव और अनित्य है। ज्ञान-भाव स्वयं सर्वदा उद्योत रूप है इसलिये ध्रुव और नित्य है ! ज्ञानका परिणमन मतिज्ञानादिरूप यद्यपि है, तथापि ज्ञान सर्वकाल या सर्वावस्थामें एक ज्ञायक (जानन) रूप ध्रुव है। जैसे अग्निका परिणमन तृण, काष्ठादिरूप व्यवहार होते भी अग्नि दाहक रूप परिणतिमें अचल रहनेसे नित्य और ध्रुव है, तद्वत् जीवात्मा, अंतरात्मा और परमात्माकी ज्ञान-रूप क्रिया (परिणमन) जानन रूप ही है। किन्तु भेद इतना ही है कि जो जीवात्मा अंतरात्मा है वह स्वकीय परिणति ज्ञान-स्वरूपकी **ज्ञानानुभूति ही परमानुभूति** है, और बहिरात्माकी ज्ञान परिणति परमात्मानुभूतिसे शून्य है। अतः अंतरात्मामें परमात्मा साध्य है, और बहिरात्मा परमात्म-पदके साध्यसे शून्य रहता है।

अनेकांत—

एक धर्मी पदार्थमें अनेक-धर्मोंका सद्भाव होने पर ही पदार्थका नाम धर्मी कहा जाता है और वह अनेक-धर्म स्वपरापेक्षासे प्रतिपाद्य होते हैं। बिना अपेक्षाके हेयोपादेय, ज्ञानाज्ञान, संसार असंसार,

शुद्धाशुद्ध, बंधमोक्ष, स्वभावविभावादि व्यवहार आकाश-पुष्पवत् सिद्ध होंगे ; किन्तु स्व पर परणतिकी सत्ता एक क्षेत्रावगाह होते हुए भी द्रव्य भिन्न भिन्न अनादि स्वयं सिद्ध है ; तथापि सभी नयोंका विषय विकल्पात्मक और अशंग्राही होनेके कारण उपादेय नहीं। अर्थात् हेय ऐसा कहा है :—

शुद्धाशुद्ध विकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहम्
शुद्धं कारण कार्यतत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।
इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृग स्वयम्
सारासार विचार चारु धिषणा वंदामहे तं वयम्॥

—पद्मप्रभुमल धारदेव

अर्थ——मिथ्या-दर्शनके उदयमें निरंतर शुद्ध और अशुद्ध विकल्प होते रहते हैं। अर्थात् वर्तमानमें अशुद्ध हैं और भविष्यमें शुद्ध होना है, इस रूप नयोंके जालमे फंसा रहना ही मिथ्यादृष्टिका लक्षण है। जो निरंतर अपने स्वरूपको अनादि शुद्ध अनुभव करते हैं वही सम्यग्दृष्टि है। अतः जो अनादि शुद्ध है वह कारण शुद्ध है और वह कारण शुद्ध कार्यरूप परिणमन होकर केवल ज्ञानरूप होता है। इस प्रकार कार्यकारण अर्थको सम्यग्दृष्टि ही जानता है। वही श्रेष्ठ बुद्धि," सार असारके विचार करनेमें समर्थ है। ऐसी श्रेष्ठ बुद्धि है जिसकी, उसी सम्यग्दृष्टि पुरुषको मैं बार-बार नमस्कार करता हूं।

दोहा-

ज्ञानरूप आतम दरब, लक्षण शुद्ध अनूप।
अनुभव कर ध्यावो सतत, नन्द-कार्य शिव-रूप॥

हे भव्य ! शिवस्वरूप **ज्ञानज्योति** की साध्य **अनुभव-गम्य** यह पुस्तक आध्यात्मिकों एवं अध्यात्म प्रेमियोंके कर-कमलोंमें सादर समर्पित है। इस पुस्तकके पठन-पाठन मननसे स्वकीय **शुद्धज्ञान-ज्योति** प्रत्यक्ष कर इस मनुष्य जन्मका अन्तिम फल प्राप्त कर कृत-कृत्य हो सकें, इसी उद्देश्यको लेकर पुस्तक उपस्थित की जा रही है।

—ब्रह्मचारी नन्दलाल



कारणत्रयकी-एकता

रचयिता—ब्रह्मचारी नन्दलाल महाराज

ज्ञानभाव—

कारण-जहां ज्ञान वृत्तात्मक, **कारज**-वीतराग विज्ञान।
फल-उपयोग शुद्ध परिणामिक, कारणत्रय एकत्व विधान॥

अज्ञानभाव—

कारण-है अज्ञान भाव जहँ, **कारज**-रागि जीव निस-थान।
फल-अशुद्ध उपयोग सदा ही, कारणत्रय करलो पहिचान॥

मुक्तभाव—

कारण-सम्यक्-भाव जहां है, **कारज**-है अबंध अमलान।
फल-मुक्ती अनुभव निश्चय कर, कारणत्रय जानौ बुधमान॥

अमुक्तभाव—

कारण-मिथ्याभाव विराजे, **कारज**-बंधरूप परिणाम।
फल-संसार भ्रमण स्वाभाविक, कारणत्रयका हो सुज्ञान॥

वृतभाव—

कारण-देशादिक-व्रत होते, **कारज**-मंद कषाय प्रमाण।
फल-स्वर्गादि होय अतिशय युत, कारणत्रयका स्थिर विज्ञान॥

अवृतभाव—

कारण-अव्रत भाव प्रवृत्ते, **कारज**-कर्म उदय बलवान।
फल-नरकादिक गति भरमावे, कारणत्रय यह है मतिमान॥

अनुपादेयभाव—

औदायिक उपशम क्षयउपशम, अरु क्षायक यह भाव प्रमाण।
नहिं त्रिकाल ! हैं परके आश्रय, द्रव्यान्तर कारण बलवान॥

उपादेयभाव—

नित्य-शुद्ध परिणामिक एकी, बिन निमित्त स्थिर अति अभिराम।
कारण-शुद्धरूप सम्यक नित, नन्द द्रव्यहीका परिणाम॥

भजन

—०—

अनुभव रस लाना, कोई बड़ी बात नहीं है ॥ टेक० ॥

धरम है आतमका निकलंक।
ज्ञानघन देखो! हो निःशंक॥
न छांडा ज्ञान चेतना अंक।
देखते! भूल मिट जाना—कोई बड़ी बात नहीं है ॥ अनु०॥१॥

परम-पद आतमका शिवरूप।
दरस-अरु ज्ञानमयी चिद्रूप॥
भ्रमोमत रागादिक नहि रूप।
ज्ञानते मुक्त पद पाना—कोई बड़ी बात नहीं है ॥ अनु०॥२॥

जगतमें आतमकी निज-जोत।
ज्ञानगुण स्वयं शुद्ध सद्योत॥
राग तज! वीतराग चढ़ पोत।
आपते आप तरजाना—कोई बड़ी बात नहीं है ॥ अनु०॥३॥

जतन-कर निजमें निजको लोक।
भरम तज श्रद्धा कर, तज शोक॥
ज्ञान बिन भूल रहा शिवलोक।
नन्द-घर मुक्त श्री आना—कोई बड़ी बात नहीं है ॥अनु०॥४॥

इति

भजन

—o—

चाल—अरहंत भजलो हीरा परखलो ।

आपा समझलो स्वरूप लखलो,

समझ करौ अब मजबूती ॥ टेक० ॥ १ ॥

अष्ट-करमसे अधिक सुहाता ।

जगमग जगमग विज्ज्योति ॥ आपा० ॥१॥

बहु विभाव निज साथहि लाये,

नाना विधि की रस-बूटी ।

त्याग ! सभी रस परके जाये,

ज्ञान-सरस अरु सब झूंठी ॥ आपा०॥२॥

ओंकार साकार - रूप है,

निराकार ज्ञायक ज्योती ।

शुद्ध निरंजन पद अविनासी,

करौ ज्ञान ! पर सब थोती ॥ आपा० ॥३॥

निज स्वरूपका भाव बनाकर,

करौ भावना सुख-रसकी ।

सरै आप अमृत भव नाशक,

व्याध-नशै सब करमनकी ॥ आपा० ॥४॥

पंच-द्रव्यमय सर्व भावना,

जनम मरण अरु सुख दुखकी ।

एक जीव-पद सम्यक लखना,

नन्द-अवांछक पदवी की ॥ आपा०॥५॥

कीर्तन।

—०—

चाल—रघुपति राघव राजाराम।

ज्ञान स्वरूपी आतम राम,
घट व्यापक घट घटमें राम॥ टेक॥१॥
चिद्‌विलास चिद्रूपी राम,
क्यों भटके लख! निजमें राम॥ ज्ञा॥२॥
सदा न करता भोक्ता राम,
निज गुण रागि विरागी राम॥ ज्ञा०॥३॥
नित्यानंदि विदेही राम,
ज्ञानाहारि निहारी राम॥ ज्ञा०॥ ॥
जानन-हारा जानो राम,
स्व पर विकाशि अरूपी राम॥ ज्ञा०॥५॥
जग-पुनीत जगव्यापक राम,
ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता निष्काम॥ ज्ञा०॥६॥
जगातीत जग-बन्धू राम,
ज्ञान मात्र लक्ष्मीपति राम॥ ज्ञा०॥७॥
सहज मुक्त-पद वासी राम,
नन्द-भवनमें राजे राम॥ ज्ञा०॥८॥

ब्र० नन्दलाल।

आरती ।

—०—

ॐ जय चिदात्म देवा, ॐ जय चिदात्म देवा ।
सिद्धरूप शुद्धात्म साध्य हो,
कर अनुभव सेवा ॥ टेक ॥ १ ॥

चिदानन्द चिद्रूप भाव सज, ज्ञानी उर आये ।
होत हरष मिथ्यात गया नश,
भव संकट ढाये ॥ ॐ ॥ २ ॥

चिद्‌विलास चिद्‌वास आपका, आद्यनंत छाजा ।
दरसन होत रहा नहिं खटका,
जनम मरन भाजा ॥ ॐ ॥ ३ ॥

ज्ञान रूप नहिं रूपादिक सम, यह तुम दिखलाया ।
वीतरागताका अनुभव कर,
अरहत पद पाया ॥ ॐ ॥ ४ ॥

परमातम ही नाम तुम्हारा, चिन्मूरति वाना ।
शब्दादिक से दूर तद्यपि,
शब्द ब्रह्म माना ॥ ॐ ॥ ५ ॥

ज्योति अरूपी ज्ञान स्वरूपी, अक्षय सुख थाना ।
यद विभाव तद एक रसीला,
ज्ञायक रस साना ॥ ॐ ॥ ६ ॥

जगमग ज्योती करूं आरती, चिद विभूति बाती ।
नन्द ब्रह्मका अलख उजाला,
शिवपुर दिखलाती ॥ ॐ ॥ ७ ॥

सद्विचार ।

रचयिता—ब्रह्मचारी नन्दलाल महाराज ।

सोरठा—

ज्ञानहिं गुन परतक्ष, षट्-द्रव्योको लोकता ।
स्व पर प्रकाशक स्वच्छ, नमो ज्योति लख! शाश्वता ॥१॥

दोहा

२

अद्भुत लीला ज्ञानकी,
परिणति क्रिया विचित्र ।
ज्ञेय लखे ज्ञायक रहै,
सहज स्वभाव पवित्र ॥

३

कर्मकृत बहु भाव यद,
जीव-मांय सद्भाव ।
ऊपर ही ऊपर तिरै,
सर्व विभावी भाव ॥

४

परजय सदा अनित्य है,
जो विभाव लहलाय ।
धर विवेक टुक देखते,
मिथ्या-भाव पलाय ॥

५

मिथ्या भावहि बंध है,
सम्यक भाव अबंध ।
ज्ञान मात्र रस स्वादते,
वीतराग संबंध ॥

६

वीतराग रस सरस निज,
श्रद्धे! जाने! जोय ।
सम्यक चारित तत् समय,
प्रगटे अतिशय होय ॥

७

दर्शन ज्ञान चरित्र ये,
जीवहिके परिणाम ।
सम्यक, मिथ्या जानियो,
निजपर आश्रित नाम ॥

८

निजको निज जाने बिना,
पर-निज जाने जोय ।
मिथ्यादृष्टी जीव सब,
इस ही कारण होय ॥

९

जो निजको निज ही जपै,
पर जानै पर-जब्ब ।
भूल मिटै भूलै नहीं,
सम्यकदृष्टी तब्ब ॥

—०—

अप्रतिबुद्ध

दोहा

१

ज्ञान रूप जाने नहीं,
वह अज्ञानी जीव ।
ज्ञानरूप जानै जभी,
ज्ञानी होत सदीव ॥

२

ज्ञान होत ही रागका,
नास्ति रूप सद्भाव ।
अस्ति रूप नित ज्ञान गुण,
नास्ती रूप विभाव ॥

३

अस्ति नास्ति समकाल यद,
स्वै पर निमित प्रमाण ।
ज्ञान बिना परजाय बहु,
अस्ति - रूप श्रद्धान ॥

४

मिथ्या मतिकी महल में,
ज्ञान बिना अज्ञान ।
चारित मिथ्या नित्य ही,
एकाश्रय-त्रय नाम ॥

५

ज्ञान नित्य आपा विषै,
अग्नि उष्णवत् जान ।
रागादिक अज्ञान नित,
ज्ञान शून्य ही मान ॥

६

रागादिक वर्णादि जड,
पुद्गल के परिणाम ।
ज्ञान शून्य वरते सदा,
जीवाश्रित बहु नाम ॥

७

रागाश्रित नहिं जीव है,
जीवाश्रित ही राग ।
ता कारण उपचार कर,
रहो सदा बिन राग ॥

८

जीव भाव जीवहि विषै,
नित्य अनादि स्वभाव ।
बिना ज्ञान भूला सदा,
ज्ञान मई निज भाव ॥

९

यह अनादि अज्ञान का,
जीव मांय सद्भाव ।
ता कारण श्रद्धे सदा,
रागादिक निज भाव ॥

१०

विरत नहीं रागादिसे,
अविरत भाव अशुद्ध ।
बिना ज्ञान चारित नहीं,
क्यों होवे प्रतिबुद्ध ॥

—०—

अनादि-मूल

दोहा

१

रागादिक बहु भावका,
भावक होता जीव।
भाविन मिथ्या भावते,
भावी जीव सदीव॥

२

द्रव्यकर्म पुद्गल सदा,
भाव कर्म अज्ञान।
आप भूलके त्याग बिन,
भाव-कर्म किम हान॥

३

भूल आपका, आपलख!,
भूल मेट इक वार।
नभ सम व्यापक चेतना,
ज्ञानरूप विस्तार॥

४

जीवरु पुद्गल आदिका,
एक क्षेत्र आवास।
परिणामी परिणाम लख,
जिस परिणति तिस पास॥

५

भूला नित निज भावकों,
सुख दुख माना आप।
ज्यों रज्जूको भूलके,
सर्प लखा! तब साँप॥

६

निमित्त मात्र सब कर्म है,
उपादान कर ज्ञान।
करै कर्म फल भोगवै,
यह दुर्मति दुख खान॥

७

करता बिन नहि कर्म है,
कर्महि सुख दुख रूप।
करता ही फल भोगता,
यह सिद्धान्त अनूप॥

८

ज्ञानी करता करमका,
तीन काल ही नांय।
नहि करता नहि भोगता,
अनुभव सम्यक माय॥

९

ज्ञानी नित निज भावका,
करता सहज स्वकीव।
मुक्त सतत बहु भावसो,
ज्ञानी होत सदीव॥

१०

अज्ञानी पर भावका,
करता कहा सदीव।
स्वर्ग नरक फल भोगता,
भ्रमता रहता जीव॥

ज्ञान-गम्य

दोहा—

१

उपादान सूझै नहीं,
जानै नहीं स्वभाव।
पर भावहि निज भावता,
पर कृत सर्व विभाव॥

२

जीव अज्ञानि अनादिका,
उपादान अज्ञान।
जीव विपाकी भाव सब,
वरतै अपना जान॥

३

श्रद्धा नहिं निज ज्ञानमय,
जानै नहिं निज ज्ञान।
अविरत नित निज भावका,
मिथ्यात्रय विज्ञान॥

४

ज्ञानहि श्रद्धो आपको,
ज्ञानहिं जानो आप।
विरत ज्ञान रत होत ही,
उपादान परताप॥

५

सम्यक्त्रय परिणाम जब,
लखै! आपको आप।
उपादान शक्ती तभी,
प्रगटै आपहि आप॥

६

निमित्त सर्व असहाय है,
पर आश्रित व्यवधान।
ज्ञप्तिरूप ज्ञानहि सदा,
परिणति नित अमलान॥६॥

७

पर निमित्त के संग में,
भूला! जीव सदीव।
भूल मिटत ही आपको,
लखै ज्ञानमय जीव॥

८

आप! आप! पर आप नहि,
जानै सहजी जोय।
भूलै नहि पर भाव में,
सम्यग्दृष्टी सोय॥

९

पर नहि प्रेरे आपको,
जानै पर तुं आप।
आप अज्ञानी होयके,
भूला ज्ञान प्रताप॥

१०

उदयागत बहु भावका,
ज्ञाता होकर देख।
भाव कर्म सब निर्जरे,
ज्ञान-गम्य यह लेख॥

—०—

अनुभवाष्टक

—:o:—

(दोहा—छंद)

१

अनुभव रस निज पीजिये,
अनुभव का जो सार ।
अनुभव ज्ञान संभारिये,
अनुभव का शृङ्गार ॥

२

अनुभव शुद्ध सुहावना,
अनुभव स्वाद अपार ।
अनुभव भव थिति को हरैं,
अनुभव निज आधार ॥

३

अनुभव का अनुभव नहीं,
अनुभव आदि न अंत ।
अनुभव ज्ञान सुधार लो,
अनुभव सरस लहंत ॥

४

अनुभव आत्म स्वधर्म है,
अनुभव शुद्ध अबाध ।
अनुभव सुक्ख अनन्त है,
अनुभव रस ही साध्य ॥

५

अनुभव निज रस संचरैं,
अनुभव शिव करतार !
अनुभव सम नहि और है,
अनुभव ज्ञान अपार ॥

६

अनुभव का नहि मरण है,
अनुभव में नहिं व्याध ।
अनुभव सतत उद्योत है,
अनुभव सहजी साध्य ॥

७

अनुभव में वैरागयता,
अनुभव पास ही पास ।
अनुभव पञ्चम गति गहै,
अनुभव महिमा खास ॥

८

अनुभव मय निज देखलो,
अनुभव नित विलसन ।
अनुभव नाम अनाम है,
अनुभव नन्द - महंत ॥

संत-वाणी

संत मगन निज ज्ञान में,
पराधीन नहिं भाव ।
उदयागत फल भोगवै,
लख वैराग्य स्वभाव ॥
चारित - शक्ती जगमगी,
वम्या सहज परभाव ।
करनी कर करता नहीं,
संतो का ही स्वभाव ॥

॥ ॐ नमः परमात्मने ॥

ब्रह्मचारी नन्दलाल महाराज कृत—

ज्ञान-ज्योतिः

मंगला चरण (दोहा छंद)

नमो ! शुद्ध चिद्रूप जो, शुद्ध अनादि अनंत ।
शुद्ध ज्योति अवलोकके[1] होजा सम्यकवंत ॥ १ ॥

गुण पर्ययधारी सदा, गुणी द्रव्य भगवंत ।
लोकालोक विलोक तद, रहैं लोकके अंत ॥ २ ॥

सर्वदर्शी सरवज्ञ अरु, निराबाध असहाय ।
आवागमन निवारके[2], बिलसै निज सुख ताय ॥ ३ ॥

ज्ञानगम्य ज्ञानात्म पद, स्वयं ज्योति प्रगटाय ।
हुये देव चौबीस जिन, बंदो ! स्वपद लखाय ॥ ४ ॥

१—सर्वोत्कृष्ट ।

ज्ञानज्योति नित्य सद्योदित,
शमन[3] करै अज्ञान त्रिजात[4] ।
रागादिक निज भाव न दीखैं,
सर्वोत्कृष्ट सहज विख्यात ॥
निजाधीन निज-भाव विलोकै,
धीर अनाकुल प्रगट स्वभाव ।
बिन सहाय निजकी निज परिणति,
पर परिणति अत्यन्ताभाव ॥

१—अनुभवके । २—रहित होके । ३—दूर । ४—मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान, मिथ्या चारित्र ।

२—अपरोक्ष ।

जब परतच्छ ज्ञान अनुभवता
ज्ञय[1] क्षयोप्शम[2] जनित विकार ।
खंड खंड प्रतिभाष होय तद,
ज्ञान अखंड न किस आधार ॥
सम्यक-रूप ज्ञान अवलोके,
मतिज्ञानादिक[3] भेद पलाय ।
परके निमित पर न परिणमता,
निज निज परिणति नित असहाय ॥

३—साक्षी ।

जगका-साक्षी[4] ज्ञाता आत्मा,
द्रष्टा आपहि ज्ञानी आप ।
पर भावन ते उत्तम आपी,
पर निरवृत्त रूप, नही ताप[5] ॥
ज्ञान स्वरूपी ज्ञायक-रूपी,
अस्ति-रूप थिर आद्यानंत ।
रागादिक अज्ञान भाव में,
नहिं एकता[6], लख हो संत[7] ! ॥

१—द्रव्य कर्म नौ कर्म भाव कर्म । २—ज्ञानके भेद । ३—आठ ज्ञान । ४—जानने वाला । ५—क्लेश । ६—तादात्म्य । ७—ज्ञानी ।

४—अकर्ता।

व्याप्यरु व्यापक निज परिणति में,
पर परिणति में नहिं तद्भाव[१]।
परका करता होय न किञ्चित,
जानो! देखो! आप स्वभाव॥
स्वयं प्रकाशक है निज परका,
पर करता अज्ञान[२] महान।
ज्ञान स्वरूप ज्ञानकी परिणति,
क्यों हो मलिन? नित्य अमलान॥

५—विज्ञान।

निज पर परिणति ज्ञानी जानै,
पुद्गल में न स्व-पर विज्ञान।
सदाकाल यह भेद विलोको[३],
क्यों गहता परकृत[४] अज्ञान॥
पर विभाव का करता लखता,
यह भ्रम-भाव तजो दुखदाय।
भेद जगाय[५] भेद प्रगटा कर,
ज्ञान स्वरूप अचल निधि[६] पाय॥

१—निज भाव। २—भूल। ३—देखो। ४—रागादिक।
५—भेद जाग्रत कर। ६—रिद्धि।

१०—अन्धकार।

जगवासी मोही[१] अज्ञानी,
पर द्रव्यों का करै निदान[२]।
अहंकार मिथ्यात्व अंधेरा,
स्व-पर ज्ञान बिन भूल महान[३]॥
यह अनादि संतति-क्रम आया,
दुर्निवार अत्यन्त गंभीर।
एक-वार अनुभव यह होवै,
फिर क्या ज्ञानी धरै शरीर॥

११—तादात्मक।

आत्मा निज भावन का करता,
निश्चय नयका यही विधान।
पर द्रव्यहि पर भावों करता,
नियम यही[४] जानो मतिवान॥
आप भाव नित आप स्वरूपी,
अग्नि उष्ण-वत् अनुभव मायं।
परकृत-भाव नित्य पर ही का,
तादात्मकता[५] सहज लखाय॥

१—मोहका - स्वामी। २—इच्छा, चाह। ३—अनादि। ४—ऐसा ही। ५—मिश्रीमेंमीठापना।

१२–शिखरिणी ।

ज्ञान-स्वरूपी है अनादिका,
आत्माका निज शुद्ध स्वभाव ।
अज्ञानी पशु-सम[1] ही स्वादे,
आप-रूप ही सर्व विभाव ॥
मूढ पुरुष ज्यों शिखरिणी पीता,
भेदन कर खट[2] मीठा स्वाद ।
समझा मीठा दूध गाय का,
दुहै लुब्ध अति हो आल्हाद ॥

१३–तिर्यंच ।

ज्ञान ज्योति नित्य परकाशै,
सिद्धो सम नित एकाकार ।
क्षण नहिं स्वादे ज्ञानात्मक-रस,
पर[3] स्वादत[4] मिथ्यात्व प्रसार ॥
ज्यों तिर्यंच-गज भक्षण करता,
तृण अरु अन्न एक ही साथ ।
तृण से भिन्न अन्न नहिं स्वादे,
तृण का ही रस जान सुहात[5] ॥

१—समान । २—खट्टा । ३—विभाव-रागादि भाव । ४—श्रद्धा-ज्ञान । ५—खुशी होता ।

१४—रत्नाकर ।

जीव सर्व ही ज्ञान-रूप[१] है,
ज्ञायक—रूप ज्ञानको जात ।
अज्ञानी हो कर अपने में,
बना सदा[२] ही ऐसी बात ॥
पवन निमित रत्नाकर[३] माही,
ज्यों कल्लोल होत असमान[४] ।
त्यों विभाव परिणति अनेक लख,
आप रूप विकलप[५] अज्ञान ॥

१५—हैरान ।

रागादिक अज्ञान भाव है,
स्वामी बन अज्ञानी आप ।
देख ! तृषा-वश मृग भांडलि लख,
दौर-दौर पावे संताप ।
अन्धकार में सर्प मानकर,
डोरी भूल आप हैरान ।
लटपट भागे थिरता जावै,
हो अज्ञानी दुखी-महान ॥

१—तादात्म्य-स्वरूप । २—अनादि । ३—समुद्र ।
४—अनेक प्रकार । ५—अनुभव

१६—शुद्धाचार ।

जे विवेकि[१] निज शक्ति सम्भाले,
भेद ज्ञान-बल लखै स्वभाव ।
हँसोके सम क्षीर नीरको,
जुदा करै निज-दृष्टि[२] प्रभाव ॥
निज स्वभाव में पर विभाव का,
नशै एकता शुद्धाचार ।
ज्ञान-मात्र आपन-पद भूषित,
मुक्त-रूप दीपित[३] अविकार ॥

१७—उदार ।

जल अरु अग्नि शीत उष्ण है,
जाने ज्ञानी[४] ज्ञानहि मायं ।
लवणरु व्यञ्जन भिन्न-भिन्न रस,
भेद ज्ञान कर[५] जाना जाय ॥
निज-रस कर नित विकास होता,
चेतन-रसका सहज प्रसार[६] ।
रागादिक नित कर्माश्रित है,
ज्ञाता चेतन अती-उदार ॥

१—भेदज्ञानी । २—सम्यग्दृष्टि । ३— ज्ञानज्योति । ४—निजानुभवी । ५—करनेपर । ६—परिणमन ।

१८—मूल।

ज्ञानात्मक आत्मा नित छाजै[१],
आप ज्ञान अरु ज्ञानहि आप।
गुण अरु गुणि नितही तादात्मक[२],
प्रगट आपका देख प्रताप[३]॥
पर-भावोंको करै आतमा,
अज्ञानी का अनुभव ज्ञान।
पर विभाव वश होता आपी,
यह अनादि मिथ्या विज्ञान॥

१९—प्रश्न।

पुद्गल-कर्म करै नहिं आतम,
पुद्गल-कर्म करै तद् कौन।
इसी प्रश्नका उत्तर दीजै,
सुनकर धारूं निश्चय मौन॥
ज्ञानके इच्छुक सुनौ भव्य तुम,
तीव्र मोह वश शंकित चित्त।
पुद्गल-कर्म कौन है करता,
कहुं गुरु-वचन[४] अहो! सब मित्त[५]॥

१—शौभै। २—शक्कर में मीठापन। ३—सामर्थ्य। ४—गुरु परंपरा। ५—मित्र।

२०—उत्तर ।

पुद्गल द्रव्य नित्य परिणामी,
स्वयं सिद्ध पर नहीं सहाय ।
परिणामी परिणाम स्वरूपी,
पुद्गल-कृत परिणति लहराय[1] ॥
पुद्गल परिणति नित्य अचेतन,
नहिं चेतन का अंशी मान !
वर्णादिक-गुण ही परिणमता,
क्रोधादिक रागादि विधान ॥

२१—उत्तर ।

जीव द्रव्य भी नित परिणामी,
स्वयं आप किसका न सहाय ।
परिणामी परिणाम स्वरूपी,
निज-कृत निज-परिणती जताय[2] ॥
परिणति जीव द्रव्य चेतन मय,
नहिं अचेत पुद्गल का जान ।
ज्ञानादिक ही नित परिणमता,
चेतन-गुण प्रत्यक्ष[3] प्रमान ॥

१—प्रगटाय । २—दिखाय । ३—अनुभव गोचर ।

२२—प्रश्नोत्तर ।

ज्ञानीके[१] परिणाम ज्ञानमय,
क्योंकर सर्व ज्ञानमय होय ।
अज्ञानी के सर्वभाव नित,
अज्ञानहि क्योंकर वह सोय ॥
ज्ञानीका निज ज्ञानहि कारण,
तातें ज्ञान रूप सब जान ।
अज्ञानी अज्ञानहि कारण ॥
इसी हेतु अज्ञान महान ॥

२३—परमार्थ ।

तत्त्वज्ञानी[२] जानै निजको
शुद्धातम परमात्म स्वरूप ।
चेतनमय है पुंज सदाका[३],
यह परमार्थ शुद्ध चिद्रूप[४] ॥
सर्व बंध संतति विध्वंसक,
ज्ञानाग्नि ही अति विख्यात[५] ।
गुण अपार कोई पार न पावै,
स्व-पर[६] ज्ञेयको जानो भ्रात ॥

१—ज्ञानानुभवीके । २—भेद-विज्ञानी । ३—त्रिकालका ।
४—चेतना स्वरूप । ५—प्रसिद्ध । ६—निज-पर ।

२४—अविकारी ।

ज्ञानी निज स्वरूप में राचे,[1]
करै नित्य चेतन रस-रंग[2] ।
उठै लहर चञ्चल विकल्प बहु,
तदपि शुद्ध चेतन सरवंग[3] ॥
चेतन-मात्र सहज अविकारी,
आदि-अन्त बिन अमिट स्वरूप ।
परिणति उभय[4] एक-क्षेत्र तद
सिद्धोंसम है शुद्ध अनूप ॥

२५—साध्य ।

नय पक्षोंसे रहित अकेला[5],
निरविकल्प-पद वासी एक ।
आगम[6] अरु आत्माका अनुभव,
साधन साध्यऽरु एक अनेक ॥
सम्यक दृष्टी निज-रस स्वादे,
आगम[7] में जो साध्य विधान ।
नाम सर्व साधन भगवत[8] का,
ज्ञान-मात्र अनुभव विज्ञान[9] ॥

१—अभेदरूप अनुभवे । २— रंग-जाता । ३—सर्व प्रदेश । ४—स्वभाव-विभाव । ५—एक रूप । ६—ज्ञान । ७—ज्ञानमें । ८—अरहंत । ९—सम्यक्ज्ञान ।

२६—स्थिर।

चुत[१] अनादि विज्ञान[२] ज्ञान से,
बहु विकल्प नित करता आप।
ज्ञानज्योति[३] लखे जब आप हि,
ज्ञानवान विज्ञान[४] प्रताप॥
नीचा मारग पाय धाय जल,
बन बन फिरता बहु आकार।
वही नीर आता जब निज-थल,
स्वच्छ देख नित, निज आकार॥

२७—अविकल्पी।

पर विकल्प करता अज्ञानी,
ता कारण करता अभिमान।
विन-विकल्प अविकल्पी ज्ञानी,
ज्ञान-रूप लख थिर[५] विज्ञान॥
जे विकल्प संयुक्त भाव लख,
भावकर्म वश[६] कर्त्ता होय।
निर विकल्प एकी समदृष्टि[७],
करै न भाव आप-विन[८] कोय॥

१—छूटा हुआ। २—सम्यग्ज्ञानानुभूति से। ३—ज्ञायक-रूप। ४—सम्यग्ज्ञान। ५—अचल। ६—एकत्त्व। ७—सम्यग्दृष्टी ही। ८ आपके सिवाय।

२८—मरयाद ।

करता जीव[१], कर्म नित पुद्गल,
देख ! परस्पर[२] भेद अपार ।
वस्तु स्वयं मरजाद[३] रूप नित,
मिट नहिं सकता किसी प्रकार ॥
ज्ञानी स्वयं ज्ञान-गुण करता,
पर-विभावका करता नायं ।
अज्ञानी अज्ञान-भावका[४],
करता है अज्ञानहि मायं ॥

२९—सिद्ध-सदृश ।

ज्ञानज्योति प्रगट होते ही,
विश्व[५]-प्रकाशक अलख[६] लखाय ।
अतिशय पाय आप अनुभवता,
सिद्ध-सदृश रस अनुभव मायं ॥
मिटी कल्पना नन्द्ब्रह्म की,
एक सरस अमृत कर पान ।
भव्योत्तम लख अब निज पदको,
मोक्ष-मार्ग में करो प्रयाण[७] ॥

१—जीव अपने भावोंका करता । २—जीव और कर्म में । ३—नियत या निश्चित । ४—रागादिक भावोंका । ५—विभाव ६—आत्मा । ७—गमन अनुभव कीजिये ।

उपसंहार।

(कुण्डलिया-छंद)

ज्ञान ज्योति-घट घट वसै, रागादिक ह्वै धाय[1]।
एक-क्षेत्र सम्बन्ध यद, लक्षण भिन्न सुहाय॥

लक्षण भिन्न सुहाय, प्रगट व्यञ्जन रस माहीं।
एकमेक यदि भाष, तदपि रस भिन्न सदाही॥
लक्षण सत्ता भूत, द्रव्यका सरस खजाना।
सर्व सिद्धि दातार, जान! चेतन निज बाना॥

ज्ञानज्योति-त्रयकर्म[2] संग, नटवत्[3] पलटं काय।
मनसा बदलै छनक में, ज्ञान अचल निज-मायं॥

ज्ञान अचल निज माय, आप लख आप लखाता।
तीनलोक पति होत, जान रत्नत्रय ध्याता॥
चेतन शुद्ध अनादि, ज्ञान-दृग गुण परिणामी।
छाड़! छाड़! परजाय, आप तूं अन्तरयामी[4]॥

ज्ञानज्योति दीपित सदा, क्षार मायं जिम तोय।
लख द्रवत्व गुण नीरका, क्यों आच्छादित होय॥

क्यों आच्छादित होय, देख चेतनकी परिणति।
दर्शन ज्ञान स्वरूप, प्रगट चेतनकी मूरति॥
निरावर्ण चिद्रूप, सहज सिद्धोपम[5] छाजै।
लखो ताय निज-रूप, नंद जब सुमति[6] विराजै॥

१—परिणमे। २—द्रव्य कर्म, नौकर्म, भावकर्म। ३—नाटकी। ४—रागादिक भावोंका ज्ञाता। ५—सिद्ध-सदृश। ६—सम्यग्ज्ञान।

द्वादशांगं ततो वाह्यं श्रुतं जिनवरोदितं । उपादेयतया शुद्धचिद्रूपस्तत्र भाषितः ॥

जिन प्रणीत द्वादशाङ्ग प्रवचन का सार

मृत्युञ्जय ।

(चाल—तुम तरण तारण भव निवारण)

[१]

यह आत्म-रूप अरूप अनुपम, ज्ञान गुण कि विशेषता ।
पर द्रव्यमें तद् पर प्रकाशै, ज्योति ज्ञायक शाश्वता ॥
छवि[1] - वीतराग स्वरूप ज्ञायक, साध्य शुद्ध स्वभावता ।
निज ज्ञेय ज्ञायक एक पद लख, सुथिर हो ; सुख-पावता ॥

[२]

उतपत विनाशक स्थूल सूक्षम, भाव सर्व विजात[2] है ।
ध्रुव एक अद्भुत शक्ति ज्ञायक, ज्योति निज की जात[3] है ॥
यह है अनादी निज स्वरूपी, चेतना विख्यात है ।
स्वै पर प्रकाशक शक्ति इसकी, सहज शुद्ध सुहात है ॥

[३]

यद्यपि क्षयोपशम ज्ञान ज्ञायक, शुद्ध सिद्ध समान है ।
साधो अतुल गुण शुद्ध पद वो, जो अनादि विधान है ॥
निज ज्ञान कर ! श्रद्धो जभी तब, शुद्ध अनुभव ज्ञान है ।
सम्यक - त्रयात्मक धर्म साधन, धर्मि एक प्रमाण है ॥

१—स्वरूप । २—विभाव । ३—स्वजात ।

[४]

जे उदय आगत भाव निज को, शुभ अशुभ-रस देत है।
जड - कर्म आश्रित नित्य - रूपो, पुद्गलोक अचेत है।
यह बंध - पेक्षा जोव आश्रित, कहा लख इक खेत[1] है॥
पुद्गल विपाकी भाव तज कर, बुध, स्वरस-रस लेत है।

[५]

अति शुद्ध चिन्मूरत अमूरत[2], ज्ञान ज्ञायक - रूप है।
स्थिर एक - रूप स्वभाव निर्मल, नाद्यनंत अनूप है॥
भवमें न आता मोक्ष जाता, सहज सिद्ध स्वरूप है।
यह ज्ञान गुण की अतुल महिमा, देख! अमृत - कूप है॥

[६]

श्रुत ज्ञान का ज्ञानानुभव कर, श्रुत विकल्प जो त्यागता।
वह शुद्ध अनुभव का सुपात्री, शुद्ध-पद नित ध्यावता॥
सब त्याग विरस विकल्प-रस अर, निज सरस-रस चाखता।
जब सिद्ध-सम अनुभूति पदमें, क्षय-रहित[3] सुख-आवता॥

[७]

जब आप जाना आप माना, आपको लख ज्ञानमें।
सब[4] के समान स्वरूप एको, सम-स्वभाव स्वथानमें॥
तब कर्म जाल विकल्प का नहिं, लेश सम्यक-वान में।
यह मृत्युजय - रस नित्य - पीवौ, नन्द - अलख लखान में॥

१—क्षेत्र। २—रूपादिक से रहित। ३—अक्षय। ४—निगोद से लेकर सिद्ध पर्यन्त।